International Journal of Applied Research 2019; 5(9): 363-365

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(9): 363-365
www.allresearchjournal.com
Received: 20-05-2019
Accepted: 23-07-2019

डा0 विद्या शशिशेखर शिंदे
हिंदी विभाग प्रमुख, आय. सी. एस. कॉलेज खेड, रत्नागिरी, महाराष्ट्र, भारत

Corresponding Author:
डा0 विद्या शशिशेखर शिंदे
हिंदी विभाग प्रमुख, आय. सी. एस. कॉलेज खेड, रत्नागिरी, महाराष्ट्र, भारत

नरेश मेहता के काव्य में राजनीतिक मूल्य

डा0 विद्या शशिशेखर शिंदे

सारांश
राजनीति का प्रभाव संपूर्ण देश पर पडने के कारण उस देश की जनता का उससे प्रभावित होना अनिवार्य हैं. कलाकारों की कला, कवियों की कविता, लेखकों की कृतियॉ जनता की भावनाओं को परिष्कृत कर जनता पर प्रभाव डालती हैं कोई भी साहित्यकार तभी सफल साहित्यकार कहला सकता हैं जब वह अपनी अनुभूति को जो उसे साहित्य का सृजन करते हुए होती हैं जो पाठक तक पहुॅचा सके. साहित्यकार द्वारा डाला गया सद्भाव विभिन्न समस्याओं को समझने में तथा उसका समाधान करने में नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता हैं. नरेश मेहता राजनीति से खुद भी जुडे हुए थे इसलिए उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था को नजदीक से देखा था. कवि ने कहा भी है–''राजनीति जीवन का अंग तो है साथ में राजनीति का दबाव रचना और रचनाकार पर पडता है और इसका परिणाम चिंतनीय होता हैं. राजनीति में तनाव और टकराहट स्वाभाविक हैं. यह राजनीति की प्रकृति है यहॉ''सहमति'' का कोई अर्थ नहीं हैं. सहमति होती भी हैं. तो दिखावटी होती हैं इसलिए राजनीति न तो विश्वसनीय होती है और न ही स्थायी. इस तनाव और टकराहट से राजनेता का व्यक्तित्व निखरता हैं. राजनीति में उदारता की तो संभावना ही नहीं हैं क्योंकि वर्चस्व के लिए राजनीति में संघर्ष अनिवार्य हैं. विचार किया जाना चाहिए कि राजनीति और लेखन के चरित्र में क्या कोई तात्विक अंतर है और यदि अंतर है तो हमें चिंतित होना चाहिए कि यह अंतर लगातार लुप्त हो रहा हैं.''[1]नरेश मेहता तार सप्तक के कवियों में से एक हैं. अपने काव्य मे राजनीति के उतार चढाव को इन्होंने प्राचीन आख्यानों के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं।

वस्तु

1. नरेश मेहता ने अपने काव्य में व्यक्ति और राज्य व्यवस्था के विषय में संतुलन और मानव मुक्ति की संभावनाओं पर विचार किया हैं.उसे सबके सामने लाना हैं.
2. कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से बताया है कि किस प्रकार नेता सुचारु प्रशासन की घोषणा करते हैं और सामान्य जन अन्याय सहता हैं.उसे प्रस्तुत करना हैं.
3. शासक किस प्रकार पद प्राप्त होने पर भ्रष्ट आचरण करते है और न्याय, धर्म, शस्त्र खरीद लिए जाते हैं और इन षडयंत्रों और कुरताओं से भरी व्यवस्था में व्यक्ति का जीवन दुर्भाग्यपूर्ण हो जाता हैं उसे काव्य के माध्यम से दर्शाना हैं.

कूटशब्दः राजनीति, कृतियॉ, परिणाम चिंतनीय

प्रस्तावना
नरेश मेहता के काव्य में भी हमें राजनीति से प्रभावित कृतियॉ मिलती हैं. उन्होंने पौराणिक आख्यानों में आधुनिक समस्याओं का समावेश कर मानव मूल्यों की तलाश करने की कोशिश की हैं. वो सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं. इन्होंने अपनी अलग सोच से भारतीय मानसिकता को समझते हुए ''महाप्रस्थान'' खंडकाव्य में राज्य और व्यक्ति के संतुलित संबंधों का वर्णन किया हैं. ''संशय की एक रात'' में युद्ध की समस्या को व्यक्त किया हैं. ''प्रवाद पर्व'' में व्यक्ति, राजनीति, प्रशासन, राज्य और सामान्य जन की समुचित शालीन एवं तर्कशुद्ध वैचारिकता को प्रस्तुत करते हुए समकालीन दबावों को वाणी प्रदान की हैं.हमारे देश में सत्ता प्राप्ति के लिए गरीब जनता को झूठे आश्वासन देकर ठगाया जाता हैं. यही कारण हैं कि देश में गरीबी, बेकारी,स्वार्थी वृत्ती, भ्रष्टाचार तथा वर्ग संघर्ष बढने लगा हैं. गरीब जनता का शोषण हो रहा हैं. ऐसी स्थिति में नरेश मेहता जी का काव्य हमारे भीतर चेतावनी निर्माण कर सकता हैं.

राजनीति का यथार्थ चित्रण
नरेश मेहता जी ने राजनेताओं की ओर संकेत करते हुए अपनी काव्य कृतियों में आज की भ्रष्ट नीति को प्रस्तुत किया हैं. कवि कहता हैं कि आज के नेता देश के नाम पर कलंक हैं. वैसे कहने के लिए कहा जाता हैं कि देश की प्रगति नेताओं के कारण होती हैं. परंतु वास्तव में ऐसा नहीं हैं. नेता लोग

सत्ता मिलने के बाद उंचे आकाश में उडने लगते हैं. सारी सुख सुविधाएँ अपना लेते हैं. हरदम देश के भविष्य की चिंता न करते हुए वह अपने स्वार्थ की बातें सोचते हैं. इसी कारण हमारा देश रसातल पर जा रहा हैं. ''संबंध'' कविता में कवि इसके प्रति अपने विचार व्यक्त करते हैं–

''वे जितना–जितना
उडते जाते हैं।
उतना–उतना देश
रसातल में जाता हैं।'' [2]

नरेश मेहता जी ने राजनीति को जंगल की तहजीब के समकक्ष प्रस्तुत किया हैं. जंगल जैसे क्रुर रहता हैं और उसका कोई नियम नहीं होता वहॉ पर सिर्फ शेर और भडिए जैसे खूँखार जानवरो का राज चलता हैं. वैसे ही राजसत्ता का कानून होता हैं. राजनीति के क्षेत्र में जिसके पास कुर्सी आ जाती है वही सत्ता का मालिक बन जाता हैं.और अपने ढंग से राज्य के कानून बनाता हैं.–

''जंगल के जाग उठने का मतलब
हुकूमत की म्यान से
तलवार का बाहर निकलना होता हैं।
मॉद से बाहर निकलता शेर''[3]

राजनीति के मूल्य के बारे में कवि कहते है कि प्राचीन युग में भी इसका यही रुप था और आधुनिक युग में भी इसका यही रुप हैं. युग बदल गये परंतु राजनीति का दृष्टीकोण वैसा ही रहा हैं. जो कुर्सी पर बैठ जाता है वही खुदा हो जाता हैं. बाकि उसके आगे कीडे–मकोडों की तरह हो जाते हैं. राजनीति में डर पैदा करने के लिए फॉसी, हत्या, कत्लेआम शब्दों का प्रयोग मामूली सी बात हो गयी हैं. असीरगढ किले पर लिखी कविता में कवि ने यही भाव व्यक्त किया हैं.–

''फॉसी!! हत्या!! कत्लेआम!!
ये भी तो शब्द ही हैं!
सिर्फ शब्द–
जिस प्रकार तमाम दूसरे शब्द होते हैं–
जैसे फूल, आकाश, नदी
घर, रोटी, मटठा
या और कुछ भी।''[4]

राजा लोगों की मर्जी संपादन करते हुए अच्छे लोग भी अपने मूल्यों को भ्रष्ट कर देते हैं.राजनीति में सच बोलनेवाला दॉव पर लग जाता हैं.

सत्य की अभिव्यक्ति और साधारण लोगो का महत्व–

'संशय की एक रात' इस खंडकाव्य में साधारण जनता कितनी महत्वपूर्ण होती है यह दर्शाया गया हैं. सीता को राजा की पत्नी और पतिव्रता स्त्री होने के बावजूद भी धोबी के द्वारा कहीं बात के कारण वनवास जाना पडता हैं. इससे यही सिद्ध होता हैं कि साधारण जन के पास चाहे राजा जैसी भाषा न हो परंतु वह देह से बोलता हैं. किसी का राजा के सामने हाथ उठे तो उसे काटा जा सकता हैं. परंतु जो तर्जनी उठती है उसे न काटा जा सकता न ही झुकाया जा सकता हैं. राम के शब्दों में–

''साधारण के पास
कब भाषा रही हैं?
वह तो
सदा देह से ही बोलता आया हैं।
हाथ झुकाया जा सकता हैं
पर
एक अनाम साधारणजन की तर्जनी–
समय के पत्रों
और लोगों के इतिहास निरीह नेत्रों में
जब एक जलता प्रश्न
उत्कीर्ण कर देती है
जैसे प्रति–शिलालेख हो।''[5]

''महाप्रस्थान'' के स्वाहा सर्ग में युधिष्ठिर अर्जुन से साधारण जन के सत्व की चर्चा करते हुए कहते हैं कि कभी उन साधारणजनों के बारे में सोचो अर्जुन जो हमारे इन श्रेष्ठ साम्राज्य का ग्रास बन जाते हैं. अपने व्यक्तित्व को खो देते हैं–

''कभी उन
विचारहारा साधारणजनों के बारे में सोचो–
जो सदा अपमानित होते रहे हैं.
जिनके सत्व का अपहरण ही
हमारे ये दीप्तित साम्राज्य हैं।''[6]

सत्य को यथार्थ का रुप देकर निर्दिष्ट उॅचाई पर खडा कर देना नरेश की काव्य कला के प्राण हैं. प्रवाद पर्व में जब सीता धोबी के कहने पर वनवास दिया जाता हैं तो राम के इस फैसले पर सभा जन मानने के लिए तेयार नहीं होती. तब राम उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि, ''अधिपति का अर्थ राजा हैं राष्ट्र नहीं हैं. शासक कितना भी महान हो वह शासक ही हैं. वह कभी राष्ट्र नहीं बनता. जिस दिन राजा अथवा शासक को राष्ट्र मान लिया जायेगा उसी दिन लोकतंत्र समाप्त हो जाएगा.

राष्ट्र का मूल्य–

राष्ट्र एक व्यक्ति से नहीं बल्कि संपूर्ण जातीय चेतना अथवा समग्र राष्ट्रीय दृष्टि से बनता हैं. व्यक्ति राष्ट्र नहीं होता. राष्ट्र से बडा कोई नहीं होता. इसलिए कवि कहते हैं कि–

''किसी की वैयक्तिकता नहीं
वरन्
संपूर्ण की समग्रता ही राष्ट्र हैं।''[7]

विभीषण राम का साथ तो देते है परंतु अपने राष्ट्र के प्रति, देश के प्रति भी अपने देशभक्ति की भावना को कायत रखते हैं और प्रजा के हित की सोचते हैं. वह यही सोचते है देश की दूर्दशा को कैसे रोका जाए–

''प्रत्येक क्षण
मेरा सोचना
यहीं पर टूट जाता हैं।
अपने देश की दुर्दशा का
कौन कारण है?''[8]

राजनीतिक मूल्य में व्यतीत क्रुरता के कारण भी हमारे राष्ट्र का मूल्य घटता जा रहा हैं. कवि ने किले के माध्यम से सारी विगत ऐतिहासिकता का वर्णन किया हैं. इतिहास की क्रुरता में सच की आवाज दबाई जाती हैं. राजनीति के सारे छल–कपट, राजाओं की क्रुर हठीली अमानवीय इच्छाएँ तांडव करती हैं. फिर इतिहास की क्रुरता के सामने सबकी विवशता आती हैं.स्त्री सिपाहियों की विवशता और कर्मचारियों का कपट सातने आता हैं–

''भले ही वह आमदरफल
खून टपकाते, बेडियों में कसे

वागी साहबे–आलमो
या दगाबाज, सुबेदारो, सिपहसालारो की रही हो
या जिबह के लिए ले जाए जाते,
भेड–बकरी जैसे
युद्ध बंदियों की रही हो या
फिर रोती कलपाती
दहशत जदा ओरतों का
ऑसुओ से तर नूरानी चेहरों की रही हो।''[9]

इतिहास अपने आपको दोहराता हैं. दोहराते हुए इतिहास से हमें सबक लेना चाहिए. कभी कभी ऐसी घटनाएँ भी घटीत होती हैं जो पहले भी घट चुकी होती हैं. परंतु मानव कभी भी पहले घट चुकी घटनाओं से सबक नहीं लेता. अगर वह इन बीती घटनाओं, बीते इतिहास से सबक ले, तो हमारा आनेवाला कल सुनहरा हो सकता हैं.–

''वैसे यह मत भूलो, कि
बीतती तारीखें हैं
तबारीखें नहीं,
तबारीखें–
तारीखें नहीं, घटनाएँ होती हैं.
या वो बदनसीब लोग होते हैं.''[10]

नरेश मेहता जी ने अपने काव्य में युद्धों का विरोध किया हैं. युद्ध इस शताब्दी के मानव की एक मुख्य समस्या हैं. प्राचीन युग में जिस प्रकार युद्धों में क्षति होती थी.तब इन्सानियत का विनाश होता था.वैसे युद्धों की स्वीकृति में मानव मूल्यों के संरक्षण की भावना मिलती हैं. पर युद्ध स्वयं में मूल्य नहीं माना जा सकता. वह तो उपलब्धि का उपक्रम मात्र होता हैं. कवि ने युद्ध की आड में सामंतवादी अथवा साम्राज्यवादी प्रवृत्ति दासता अत्याचार के विरुद्ध न्याय अधिकार और स्वतंत्रता के महत्व को स्वीकार किया हैं. कवि कहते हैं कि–

''क्षमा करें महाराज
हम केवल घटना हैं
इतिहास नहीं
संभव हैं
हमारे कारण ही
अनागत युद्धों की नींव पडे
पर इस डर से
क्या हम न्याय और अधिकार छोड दे।''[11]

युद्ध का कारण अपमान भी हैं. प्रायः सभी युद्धों के मूल कारणों में अपमान का बोध प्रमुख हैं. रामचरितमानस में राम रावण का युद्ध अपमान से ही हुआ हैं. मानव के सभ्यता के अभाव में और सद् मूल्यों के विघटित होने पर युद्ध की स्थिति बन जाती हैं. सत्ता की क्रुरता और निरंकुशता व्यक्ति तथा समाज के विकास को अवरुद्ध कर देती हैं.

निष्कर्ष

इस प्रकार कवि नरेश मेहता के काव्य में राजनीति के सभी पक्षों पर विचार मिलते हैं. जो आज के वर्तमान स्थिति की तरफ भी संकेत करते हैं. कवि ने अपने कावय में स्थान–स्थान पर सद्मूल्यों को ही महत्व दिया गया हैं. उन्होंने भारतीय संस्कृति के सभी उन श्रेष्ठ मूल्यों को आचरणीय माना हैं. जिनसे मनुष्य समाज और राष्ट्र की सत्ता और प्रतिष्ठा बनती हैं. उन्होंने झूठ, फरेब, छल, कपट, ठगी, चोरी, हत्या, युद्ध, संघर्ष इन सबको नकारा हैं. इन्होंने सत्य, सभ्यता, सहानुभूती, दया, करुणा, प्रेम, भक्ति, उपकार आदि मूल्यों को महत्व दिया हैं. नरेश मेहता जी का काव्य इन्हीं सब मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का काव्य हैं.

संदर्भ ग्रंथ

1. नरेश मेहता एक एकांत शिखर –प्रमोद त्रिवेदी–पृष्ठ 33,34
2. देखना एक दिन –नरेश मेहता–पृष्ठ 53
3. पिछले दिनों नंगे पॉवों –नरेश मेहता पृष्ठ 34
4. वही पृष्ठ 82
5. महाप्रस्थान –नरेश मेहता पृष्ठ 110
6. प्रवाद पर्व –नरेश मेहता पृष्ठ 68
7. महाप्रस्थान –नरेश मेहता पृष्ठ 112
8. प्रवाद पर्व –नरेश मेहता पृष्ठ 98
9. संशय की एक रात –नरेश मेहता पृष्ठ 74
10. पिछले दिनो नंगे पॉव –नरेश मेहता पृष्ठ 62
11. संशय की एक रात नरेश मेहता पृष्ठ 67